

हिन्दी साहित्य का इतिहास



DDE

Programme
B.A. General

Class:
B.A. Part -III

Subject: Hindi

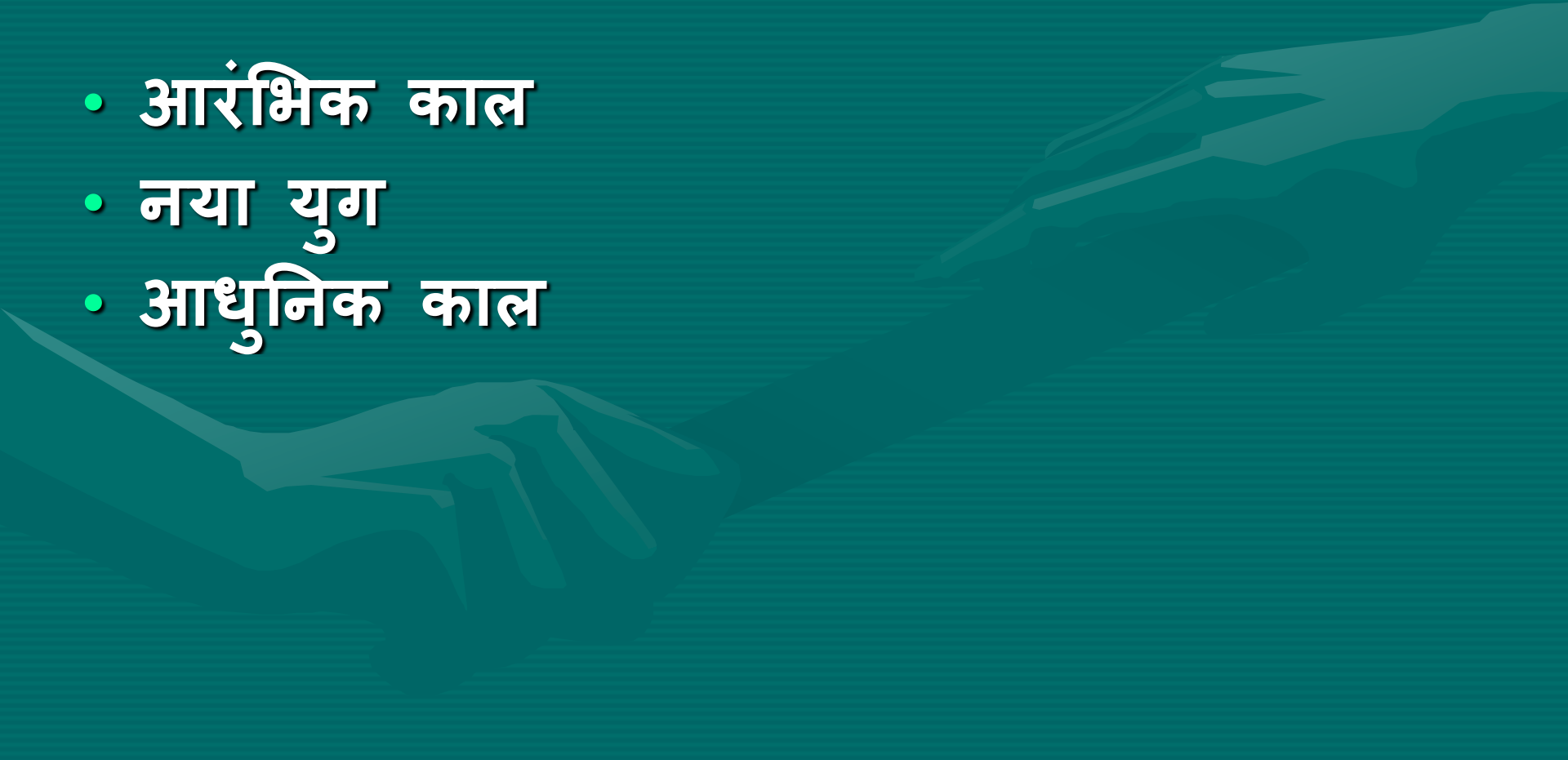
Dr. Kamraj Sindhu
Assistant Professor (Hindi)
Directorate of Distance Education
Kurukshetra University,
Kurukshetra

हिन्दी साहित्य का इतिहास

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन को यदि आरंभिक, मध्य व आधुनिक काल में विभाजित कर विचार किया जाए तो स्पष्ट होता है कि हिन्दी साहित्य का इतिहास अत्यंत विस्तृत व प्राचीन है। हिन्दी भाषा के उद्भव और विकास के सम्बन्ध में प्रचलित धारणाओं पर विचार करते समय हमारे सामने हिन्दी भाषा की उत्पत्ति का प्रश्न दसवीं शताब्दी के आसपास की प्राकृताभास भाषा तथा अपभ्रंश भाषाओं की ओर जाता है। अपभ्रंश शब्द की व्युत्पत्ति और जैन रचनाकारों की अपभ्रंश कृतियों का हिन्दी से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए जो तर्क और प्रमाण हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में प्रस्तुत किये गये हैं उन पर विचार करना भी आवश्यक है। सामान्यतः प्राकृत की अन्तिम अपभ्रंश अवस्था से ही हिन्दी साहित्य का आविर्भाव स्वीकार किया जाता है। उस समय अपभ्रंश के कई रूप थे और उनमें सातवीं-आठवीं शताब्दी से ही पद्य रचना प्रारम्भ हो गयी थी।

हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन का इतिहास

- आरंभिक काल
- नया युग
- आधुनिक काल



आरंभिक काल

- आरंभिक काल में मात्र कवियों के सूची संग्रह को इतिहास रूप में प्रस्तुत कर दिया गया। भक्तमाल आदि ग्रंथों में यदि भक्त कवियों का विवरण दिया भी गया तो धार्मिक दृष्टिकोण तथा श्रद्धातिरेक की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त उसकी और कुछ उपलब्धि नहीं रही। 19वीं सदी में ही हिन्दी भाषा और साहित्य दोनों के विकास की रूपरेखा स्पष्ट करने के प्रयास होने लगे। प्रारंभ में निबंधों में भाषा और साहित्य का मल्याकन किया गया जिसे एक अर्थ में साहित्य के इतिहास की प्रस्तुति के रूप में भी स्वीकार किया गया। डॉ. रूपचंद्र पारीक, गार्सा-द-तासी के ग्रंथ इस्त्वार द ल लितरेत्यर ऐन्दूई ऐन्दुस्तानी को हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास मानते हैं। उन्होंने लिखा है - हिन्दी साहित्य का पहला इतिहास लेखक गार्सा-द-तासी हैं, इसमें संदेह नहीं है। परंतु डॉ. किशोरीलाल गुप्त का मतव्य है - तासी ने अपने ग्रंथ को हिन्दूई और हिन्दुस्तानी साहित्य का इतिहास कहा है, पर यह इतिहास नहीं है, क्योंकि इसमें न तो कवियों का विवरण काल क्रमानुसार दिया गया है, न काल विभाग किया गया है और अब काल विभाग ही नहीं है तो प्रवृत्ति निरूपण की आशा ही कैसे की जा सकती है। वैसे तासी और सरोज को हिन्दी साहित्य का प्रथम और द्वितीय इतिहास मानने वालों की संख्या अल्प नहीं है परंतु डॉ. गुप्त का विचार है कि ग्रियर्सन का द माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास है। डॉ. रामकृष्ण वर्मा ने इसके विपरीत अनसंधानात्मक प्रवृत्ति की दृष्टि से तासी के प्रयास को अधिक महत्वपूर्ण निरूपित किया है।
- पाश्चात्य और प्राच्य विद्वानों ने हिन्दी के इतिहास लेखन के आरंभिक काल में प्रशंसनीय भूमिका निभाई है। शिवसिंह सरोज साहित्य इतिहास लेखन के अनन्य सत्र हैं। हिन्दी के वे पहले विद्वान हैं जिन्होंने हिन्दी साहित्य की परंपरा के सौतल्य पर समदृष्टि डाली है। अनन्तर मिश्र बंधुओं ने साहित्यिक इतिहास तथा राजनीतिक परिस्थितियों के पारस्परिक संबंधों का दर्शन कराया। डॉ. सुमन राजे के शब्दों में - काल विभाजन की दृष्टि से भी विश्वबधु विनोद प्रगति की दिशा में बढ़ता दिखाई देता है।

नया युग

- आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य का प्रथम व्यवस्थित इतिहास लिखकर एक नये युग का समारंभ किया। उन्होंने लोकमंगल व लोक-धर्म की कसौटी पर कवियों और कवि-कर्म की परख की और लोक चेतना की दृष्टि से उनके साहित्यिक अवदान की समीक्षा की। यहीं से काल विभाजन और साहित्य इतिहास के नामकरण की सुदृढ़ परंपरा का आरंभ हुआ। इस युग में डॉ. श्याम सुन्दर दास, रुमांशंकर शुक्ल 'रसाल', सूर्यकांत शास्त्री, अयोध्या सिंह उपाध्याय, डॉ. रामकमरं वर्मा, राजनार्थ शर्मा प्रभृति विद्वानों ने हिन्दी साहित्य के इतिहास विषयक ग्रंथों का प्रणयन करे स्तुत्य योगदान दिया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने शुक्ल युग के इतिहास लेखन के अभावों का गहराई से अध्ययन किया और हिन्दी साहित्य की भूमिका (1940 ई.), हिन्दी साहित्य का आदिकाल (1952 ई.) और हिन्दी साहित्य: उद्भव और विकास (1955 ई.) आदि ग्रंथ लिखकर उस अभाव की पूर्ति की। काल विभाजन में उन्होंने कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया। शैली की समग्रता उनकी अलग विशेषता है।

आधुनिक काल

- वर्तमान युग में आचार्य द्रविदेदी के अतिरिक्त साहित्येतिहास लेखन में अन्य प्रयास भी हुए परंतु इस दिशा में विकास को अपेक्षित गति नहीं मिल पाई। जैसे डॉ. गणपति चंद्र गुप्त, डॉ. रामखेलावन पांडेय के अतिरिक्त डॉ. लक्ष्मी सागर वाष्णीय, डॉ. कृष्णलाल, भोलानाथ तथा डॉ. शिवकमार की कृतियों के अतिरिक्त काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी द्वारा प्रकाशित हिन्दी साहित्य का इतिहास एवं डॉ. नगेन्द्र के संपादन में प्रकाशित हिन्दी साहित्य का इतिहास आधुनिक युग की उल्लेखनीय उपलब्धियां हैं। हरमहेन्द्र सिंह बेदी ने भी हिन्दी साहित्येतिहास दर्शन की भूमिका लिखकर साहित्य के इतिहास और उसके प्रति दार्शनिक दृष्टि को नये ढंग से रेखांकित किया है।

हिंदी साहित्य के इतिहासकार और उनके ग्रंथ

- 1. गार्सा द तासी : इस्तवार द ला लितेरात्यर ऐंदई ऐंदस्तानी (फ्रेंच भाषा में; फ्रेंच विद्वान, हिंदी साहित्य के पहले इतिहासकार)
- 2. शिवसिंह सेंगर : शिव सिंह सरोज
- 3. जार्ज ग्रियर्सन : द मॉडर्न वर्नेक्यूलर लिट्रैचर आफ हिंदोस्तान
- 4. मिश्र बंधु : मिश्र बंधु विनोद
- 5. रामचंद्र शुक्ल : हिंदी साहित्य का इतिहास
- 6. हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिंदी साहित्य की भूमिका; हिंदी साहित्य का आदिकाल; हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास
- 7. रामकुमार वर्मा : हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास
- 8. धीरेन्द्र वर्मा : हिंदी साहित्य
- 9. डॉ नगेन्द्र : हिंदी साहित्य का इतिहास; हिंदी वाङ्मय 20वीं शती
- 10. रामस्वरूप चतुर्वेदी : हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1986
- 11. बच्चन सिंह : हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास , राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, बूद-बूद इतिहास

हिंदी साहित्य के विकास के विभिन्न काल

- हिंदी साहित्य का आरंभ आठवीं शताब्दी से माना जाता है। यह वह समय है जब सम्राट हर्ष की मृत्यु के बाद देश में अनेक छोटे छोटे शासनकेंद्र स्थापित हो गए थे जो परस्पर संघर्षरत रहा करते थे। विदेशी मसलमानों से भी इनकी टक्कर होती रहती थी। धार्मिक क्षेत्र अस्तव्यस्त थे। इन दिनों उत्तर भारत के अनेक भागों में बौद्ध धर्म का प्रचार था। बौद्ध धर्म का विकास कई रूपों में हुआ जिनमें से एक वज्रयान कहलाया। वज्रयानी तांत्रिक थे और सिद्ध कहलाते थे। इन्होंने जनता के बीच उस समय की लोकभाषा में अपने मत का प्रचार किया। हिंदी का प्राचीनतम साहित्य इन्हीं वज्रयानी सिद्धों द्वारा तत्कालीन लोकभाषा परानी हिंदी में लिखा गया। इसके बाद नाथपंथी साधुओं का समय आता है। इन्होंने बौद्ध, शांकर, तंत्र, योग और शैव मतों के मिश्रण से अपना नया पंथ चलाया जिसमें सभी वर्गों और वर्णों के लिए धर्म का एक सामान्य मत प्रतिपादित किया गया था। लोकप्रचलित परानी हिंदी में लिखी इनकी अनेक धार्मिक रचनाएं उपलब्ध हैं। इसके बाद जैनियों की रचनाएं मिलती हैं। स्वयंभू का "पउमचरित" अथवा रामायण आठवीं शताब्दी की रचना है। बौद्धों और नाथपंथियों

वीरगाथा काल

- ग्यारहवीं सदी के लगभग देशभाषा हिंदी का रूप अधिक स्फुट होने लगा। उस समय पश्चिमी हिंदी प्रदेश में अनेक छोटे छोटे राजपूत राज्य स्थापित हो गए थे। ये परस्पर अथवा विदेशी आक्रमणकारियों से प्रायः युद्धरत रहा करते थे। इन्हीं राजाओं के संरक्षण में रहनेवाले चारणों और भाटों का राजप्रशस्तिमूलक काव्य वीरगाथा के नाम से अभिहित किया गया। इन वीरगाथाओं को रासो कहा जाता है। इनमें आश्रयदाता राजाओं के शौर्य और पराक्रम का ओजस्वी वर्णन करने के साथ ही उनके प्रेमप्रसंगों का भी उल्लेख है। रासो ग्रंथों में संघर्ष का कारण प्रायः प्रेम दिखाया गया है। इन रचनाओं में इतिहास और कल्पना का मिश्रण है। रासो वीरगीत (बीसलदेवरासो और आल्हा आदि) और प्रबंधकाव्य (पृथ्वीराजरासो, खमनरासो आदि) - इन दो रूपों में लिखे गए। इन रासो ग्रंथों में से अनेक की उपलब्ध प्रतियाँ चाहे ऐतिहासिक दृष्टि से संदिग्ध हों पर इन वीरगाथाओं की मौखिक परंपरा अंसदिग्ध है। इनमें शौर्य और प्रेम की ओजस्वी और सरस अभिव्यक्ति हुई है।
- इसी कालावधि में मैथिल कोकिल विदेयापति हुए जिनकी पटावली में मानवीय सौंदर्य और प्रेम की अनूठी व्यंजना

भक्तिकाल (सन् १४००-१६०० ई.)

- तेरहवीं सदी तक धर्म के क्षेत्र में बड़ी अस्तव्यस्तता आ गई। जनता में सिद्धों और योगियों आदि द्वारा प्रचलित अंधविश्वास फैल रहे थे, शास्त्रज्ञानसंपन्न वर्ग में भी रूढ़ियों और आडंबर की प्रधानता हो चली थी। मायावाद के प्रभाव से लोकविमर्शता और निष्क्रियता के भाव समाज में पनपने लगे थे। ऐसे समय में भक्तिआंदोलन के रूप में ऐसा भारतव्यापी विशाल सांस्कृतिक आंदोलन उठा जिसने समाज में उत्कर्षविधायक सामाजिक और वैयक्तिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की। भक्ति आंदोलन का आरंभ दक्षिण के आलवार सैंतों द्वारा दसवीं सदी के लगभग हुआ। वहाँ शंकराचार्य के अद्वैतमत और मायावाद के विरोध में चार वैष्णव संप्रदाय खड़े हुए। इन चारों संप्रदायों ने उत्तर भारत में विष्णु के अवतारों का प्रचारप्रसार किया। इनमें से एक के प्रवर्तक रामानुजाचार्य थे, जिनकी शिष्यपरंपरा में आनेवाले रामानंद ने (पंद्रहवीं सदी) उत्तर भारत में रामभक्ति का प्रचार किया। रामानंद के राम ब्रह्म के स्थानापन्न थे जो राक्षसों का विनाश और अपनी लीला का विस्तार करने के लिए संसार में अवतीर्ण होते हैं। भक्ति के क्षेत्र में रामानंद ने ऊँचनीच का भेदभाव मिटाने पर विशेष बल दिया। राम के सगुण और निर्गुण दो रूपों को माननेवाले दो भक्तों - कबीर और तुलसी को इन्होंने प्रभावित किया। विष्णुस्वामी के शब्दाद्वैत मत का आधार लेकर इसी समय बल्लभाचार्य ने अपना पण्डितमार्ग चलाया। बारहवीं से सोलहवीं सदी तक पूरे देश में पुराणसम्मत कर्णचरित के आधार पर कई संप्रदाय प्रतिष्ठित हुए, जिनमें सबसे ज्यादा प्रभावशाली वल्लभ का पण्डितमार्ग था। उन्होंने शांकर मत के विरुद्ध ब्रह्म के सगुण रूप को ही वास्तविक कहा। उनके मत में यह गंगा गिरिधर या गंगा की गंगा

- कृष्णकाव्य ने भगवान् के मधुर रूप का उदघाटन किया पर उसमें जीवन की अनेकरूपता नहीं थी, जीवन की विविधता और विस्तार की मार्मिक योजना रामकाव्य में हुई। कृष्णभक्तिकाव्य में जीवन के माध्यम पक्ष का स्फूर्तिप्रद संगीत था, रामकाव्य में जीवन का नीतिपक्ष और समाजबोध अधिक मुखरित हुआ। एक ने स्वच्छंद रागतत्व को महत्व दिया तो दूसरे ने मर्यादित लोकचैतना पर विशेष बल दिया। एक ने भगवान् की लोकरजनकारी सौंदर्यप्रतिमा का संगठन किया तो दूसरे ने उसके शक्ति, शील और सौंदर्यमय लोकमंगलकारी रूप को प्रकाशित किया। रामकाव्य का सर्वोत्कृष्ट वैभव "रामचरितमानस" के रचयिता तुलसीदास के काव्य में प्रकट हुआ जो विद्याविद ग्रियर्सन की दृष्टि में बुद्धदेव के बाद के सबसे बड़े जननायक थे। पर काव्य की दृष्टि से तुलसी का महत्व भगवान् के एक ऐसे रूप की परिकल्पना में है जो मानवीय सामर्थ्य और औदात्य की उच्चतम भूमि पर अधिष्ठित है। तुलसी के काव्य की एक बड़ी विशेषता उनकी बेहमखी समन्वयभावना है जो धर्म, समाज और साहित्य सभी क्षेत्रों में सक्रिय है। उनका काव्य लोकोन्मुख है। उसमें जीवन की विस्तीर्णता के साथ गहराई भी है। उनका महाकाव्य रामचरितमानस राम के संपूर्ण जीवन के माध्यम से व्यक्ति और लोकजीवन के विभिन्न पक्षों का उदघाटन करता है। उसमें भगवान् राम के लोकमंगलकारी रूप की प्रतिष्ठा है। उनका साहित्य सामाजिक और वैयक्तिक कर्तव्य के उच्च आदर्शों में आस्था दृढ़ करनेवाला है। तुलसी की "विनयपत्रिका" में आराध्य के प्रति, जो कवि के आदर्शों का सजीव प्रतिरूप है, उनका निरंतर और निश्छल समर्पणभाव, काव्यात्मक आत्माभिव्यक्ति का उत्कृष्ट दृष्टांत है। काव्याभिव्यक्ति के विभिन्न रूपों पर उनका समान अधिकार है। अपने समय में प्रचलित सभी काव्यशैलियों का उन्होंने सफल प्रयोग किया। प्रबंध और मुक्तक की साहित्यिक शैलियों के अतिरिक्त लोकप्रचलित अवधी और ब्रजभाषा दोनों के व्यवहार में वे समान रूप से समर्थ हैं। तुलसी के अतिरिक्त रामकाव्य के अन्य रचयिताओं में अग्रदास, नाभादास, प्राणचंद चौहान और हृदयराम आदि उल्लेख्य हैं।

- आज की दृष्टि से इस संपूर्ण भक्तिकाव्य का महत्व उसका धार्मिकता से अधिक लोकजीवनगत मानवीय अनेकतियों और भावों के कारण है। इसी विचार से

रीतिकाल (सन् १७००-१८०० ई.)

- १७०० ई. के आस पास हिंदी कविता में एक नया मोड़ आया। इसे विशेषतः तात्कालिक दरबारी संस्कृति और संस्कृतसाहित्य से उत्तेजना मिली। संस्कृत साहित्यशास्त्र के कतिपर्य अंशों ने उसे शास्त्रीय अनशासन की ओर प्रवृत्त किया। हिंदी में रीति या काव्यरीति शब्द का प्रयोग काव्यशास्त्र के लिए हुआ था। इसलिए काव्यशास्त्रबद्ध सामान्य सजनप्रवृत्ति और रस, अलंकार आदि के निरूपक बहुसंख्यक लक्षणग्रंथों को ध्यान में रखते हुए इस समय के काव्य को रीतिकाव्य कहा गया। इस काव्य की शृंगारी प्रवृत्तियों की पुरानी परंपरा के स्पष्ट संकेत संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, फारसी और हिंदी के आदिकाव्य तथा कृष्णकाव्य की शृंगारी प्रवृत्तियों में मिलते हैं।
- रीतिकाव्य रचना का आरंभ एक संस्कृतज्ञ ने किया। ये थे आचार्य केशवदास, जिनकी सर्वप्रसिद्ध रचनाएँ कविप्रिया, रसिकप्रिया और रामचंद्रिका हैं। कविप्रिया में अलंकार और रसिकप्रिया में रस का सोदाहरण निरूपण है। लक्षण दोहों में और उदाहरण कवित्तसवैए में हैं। लक्षण-लक्ष्य-ग्रंथों की यही परंपरा रीतिकाव्य में विकसित हुई। रामचंद्रिका केशव का पबंधकाव्य है जिसमें भक्ति की तन्मयता के स्थान पर एक

आधुनिक युग का आरंभ

- **उन्नीसवीं शताब्दी**
- यह आधुनिक युग का आरंभ काल है जब भारतीयों का यूरोपीय संस्कृति से संपर्क हुआ। भारत में अपनी जड़ें जमाने के काम में अंगरेजी शासन ने भारतीय जीवन को विभिन्न स्तरों पर प्रभावित और आंदोलित किया। नई परिस्थितियों के धक्के से स्थितिशील जीवनविधि का ढांचा टूटने लगा। एक नए युग की चेतना का आरंभ हुआ। संघर्ष और सामंजस्य के नए आयाम सामने आए।
- नए युग के साहित्यसृजन की सर्वोच्च संभावनाएँ खड़ी बोली गद्य में निहित थीं, इसलिए इसे गद्य-युग भी कहा गया है। हिंदी का प्राचीन गद्य राजस्थानी, मैथिली और ब्रजभाषा में मिलता है पर वह साहित्य का व्यापक माध्यम बनने में अशक्त था। खड़ीबोली की परंपरा प्राचीन है। अमीर खुसरो से लेकर मध्यकालीन भूषण तक के काव्य में इसके उदाहरण बिखरे पड़े हैं। खड़ी बोली गद्य के भी पराने नमने मिले हैं। इस तरह का बहुत सा गद्य फारसी और गरुमखी लिपि में लिखा गया है। दक्षिण की मुसलिम रियासतों में "दखिनी" के नाम से इसका विकास हुआ। अठारहवीं सदी में लिखा गया रामप्रसाद निरजनी और दौलतराम का गद्य उपलब्ध है। पर नई युगचेतना के संचालक रूप में हिंदी के खड़ी बोली गद्य का व्यापक प्रसार उन्नीसवीं सदी से ही हुआ। कलकत्ते के फोर्ट विलियम कालेज में नवागत अंगरेज अफसरों के उपयोग के लिए लल्लू जी लाल तथा सदन मिश्र ने गद्य की पुस्तकें लिखकर हिंदी के खड़ी बोली गद्य की पूर्वपरंपरा के विकास में कुछ सहायता दी। सदासुखलाल और इशाअल्ला खाँ की गद्य रचनाएँ इसी समय

बीसवीं शताब्दी (सन् १९००-२० ई.)

- इस कालावधि की सबसे महत्वपूर्ण घटनाएँ दो हैं - एक तो सामान्य काव्यभाषा के रूप में खड़ी बोली की स्वीकृति और दूसरे हिंदी गद्य का नियमन और परिमार्जन। इस कार्य में सर्वाधिक सशक्त योग सरस्वती संपादक महावीरप्रसार दविवेदी का था। दविवेदी जी और उनके सहकर्मियों ने हिंदी गद्य की अभिव्यक्तिकक्षमता को विकसित किया। निबंध के क्षेत्र में दविवेदी जी के अतिरिक्त बालमुकुंद, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, पूर्णसिंह, पद्मसिंह शर्मा जैसे एक से एक सावधान, सशक्त और जीवंत गद्यशैलीकार सामने आए। उपन्यास अनेक लिखे गए पर उसकी यथार्थवादी परंपरा का उल्लेखनीय विकास न हो सका। यथार्थपरक आधुनिक कहानियाँ इसी काल में जनमी और विकासमान हुईं। गुलेरी, कौशिक आदि के अतिरिक्त प्रेमचंद और प्रसाद की भी आरंभिक कहानियाँ इसी समय प्रकाश में आईं। नाटक का क्षेत्र अवश्य सुना सा रहा। इस समय के सबसे प्रभावशाली समीक्षक दविवेदी जी थे जिनकी संशोधनवादी और मर्यादानिष्ठ आलोचनाएँ ने अनेक समकालीन साहित्य को पर्याप्त प्रभावित किया। मिश्रबंध, कृष्णबिहारी मिश्र और पद्मसिंह शर्मा इस समय के अन्य समीक्षक हैं पर कल

सन् १९२०-४० के दो दशकों में आधुनिक साहित्य के अंतर्गत वैचारिक और कलात्मक प्रवृत्तियों का अनेक रूप उत्कर्ष दिखाई पड़ा। सर्वाधिक लोकप्रियता उपन्यास और कहानी को मिली। कथासाहित्य में घटनावैचित्र्य की जगह जीते जागते स्मरणीय चरित्रों की सृष्टि हुई। निम्न और मध्यवर्गीय समाज के यथार्थपरक चित्र व्यापक रूप में प्रस्तुत किए गए। वर्णन की सजीव शैलियों का विकास हुआ। इस समय के सर्वप्रमुख कथाकार प्रेमचंद हैं। वृंदावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यास भी उल्लेख्य हैं। हिंदी नाटक इस समय जयशंकर प्रसाद के साथ सृजन के नवीन स्तर पर आरोहण करता है। उनके रोमांटिक ऐतिहासिक नाटक अपनी जीवंत चरित्रसृष्टि, नाटकीय संघर्षों की योजना और संवेदनीयता के कारण विशेष महत्व के अधिकारी हुए। कई अन्य नाटककार भी सक्रिय दिखाई पड़े। हिंदी आलोचना के क्षेत्र में रामचंद्र शुक्ल ने सूर, तुलसी और जायसी की सूक्ष्म भावस्थितियों और कलात्मक विशेषताओं का मार्मिक उद्घाटन किया और साहित्य के सामाजिक मूल्यों पर बल दिया। अन्य आलोचक हैं श्री नंददुलारे वाजपेयी, डा. नगेंद्र तथा डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि द्वितीय महायुद्ध और उसके उत्तरकालीन साहित्य में जीवन की विभीषिका, करूपता और असंगतियों के प्रति अंसतोष तथा क्षोभ ने कुछ आगे पौछे दो प्रकार की प्रवृत्तियों को जन्म दिया। एक का नाम प्रगतिवाद है, जो मार्क्स के भौतिकवादी जीवनदर्शन से प्रेरणा लेकर चला; दूसरा प्रयोगवाद है, जिसने परंपरागत आदर्शों और संस्थाओं के प्रति अपने अंसतोष की तीव्र प्रतिक्रियाओं को साहित्य के नवीन रूपगत प्रयोगों के माध्यम से व्यक्त किया। इसपर नए मनोविज्ञान का गहरा प्रभाव पड़ा।

प्रगतिवाद से प्रभावित कथाकारों में यशपाल, उपेंद्रनाथ अशक, अमृतलाल नागर और नागार्जुन आदि विशिष्ट हैं। आलोचकों में रामविलास शर्मा प्रमुख हैं। कवियों में केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, रांगेय राघव, शिवमंगल सिंह "सुमन" आदि के नाम प्रसिद्ध हैं।

धन्यावाद

